फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की

पराये घोंसले में

संसार में कौन ऐसा पढ़ा-लिखा व्यक्ति होगा, जो 'अपराध और दण्ड', 'करामाज़व बन्धु' और 'बौड़म' उपन्यासों से परिचित न हो। ये महान लेखक फ़्योदोर मिखाइलोविच दोस्तोयेव्स्की की लेखनी की देन हैं। संसार में शायद ही दूसरा कोई ऐसा लेखक हो, जिसने लोगों की वेदनाओं, उनके विचारों के मंथन और उनकी अंतरात्मा की व्यथा का इतना मार्मिक चित्रण किया हो। दोस्तोयेव्स्की की प्राय: सभी पुस्तकें गम्भीर हैं, उन्हें समझना सरल नहीं।

परंतु उनकी प्राय: हर रचना में ऐसे अंश हैं, जिन्हें वह अपनी नन्ही बेटी और उसकी सहेलियों को पढ़कर सुनाया करते थे और जिन्हें सुनकर बच्चों के मनों में भावनाओं का उद्वेग उठता था। दोस्तोयेव्स्की चाहते थे कि कभी खाली समय मिले, तो इन अंशों को जमा करके अलग पुस्तक के रूप में प्रकाशित करें। परंतु वह स्वयं ऐसा न कर पाए। १८८१ में साठ वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया। उसके दो वर्ष बाद ही एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसका शीर्षक था: 'रूसी बच्चों को। फ़्योदोर दोस्तोयेव्स्की की रचनाओं से'। इसमें 'क्रिसमस और बालक' और 'किसान मरेइ' कहानियां तथा 'किशोर', 'नेतच्का नेज़्वानवा', 'अपराध और दण्ड' तथा 'करामाज़व बन्धु' उपन्यासों के अंश संकलित थे। तब से यह पुस्तक कई बार छपी।

दोस्तोयेव्स्की को बाल-आत्मा का बड़ा अच्छा ज्ञान था। बचपन की अपनी यादों को ही वह पर्याप्त नहीं मानते थे। अपने एक मित्र को उन्होंने लिखा: "बच्चों के बारे में जो कुछ भी आप जानते हों, मुझे लिखें... उनकी आदतें, रोचक घटनाएं, उत्तर, शब्द, उनके लक्षण, विश्वास, उनकी बुरी हरकतें और भोलापन..." बच्चों के प्रति अपने रुख के बारे में उनका कहना था: "मैं उनका अध्ययन करता हूं, सारी उम्र करता आया हूं और अंतरतम से उन्हें प्यार करता हूं।"

परंतु यह रुख दोस्तोयेव्स्की के एक वयस्क नायक के शब्दों में ही सबसे अच्छी तरह व्यक्त हुआ है: "निर्दोष पीड़ित बच्चे के एक आंसू के लिए मैं स्वर्ग का टिकट विनम्रतापूर्वक लौटाता हूं"।

"असहाय जीव को पहुंचाए गए ज़रा से दुख, उसके एक आंसू से ही बुरी तरह व्यथित होनेवाले व्यक्ति के हृदय में बच्चों के प्रति जो गहरा प्रेम है, उस प्रेम ने ही लेखक से ये शब्द लिखवाए होंगे," हमारे समसामयिक सोवियत कवि सेर्गेई मिखल्कोव कहते हैं। १९७१ में दोस्तोयेव्स्की की १५०वीं वर्षगांठ पर उनकी 'बच्चों के लिए' पुस्तक प्रकाशित हुई। उसकी भूमिका में ही मिखल्कोव ने यह लिखा है। इसी पुस्तक से यहां प्रस्तुत कहानी ली गई है। यह एक ज़मींदार और साधारण किसान औरत की अवैध संतान की कहानी है। लड़के को दयावश ऊंचे घराने के बच्चों के बोर्डिंग स्कूल में दाखिल करा दिया जाता है और वहां उसे दूसरे लड़कों से और मास्टरों से क्या-क्या अपमान सहने पड़ते हैं, यही है इस कहानी का विषय।
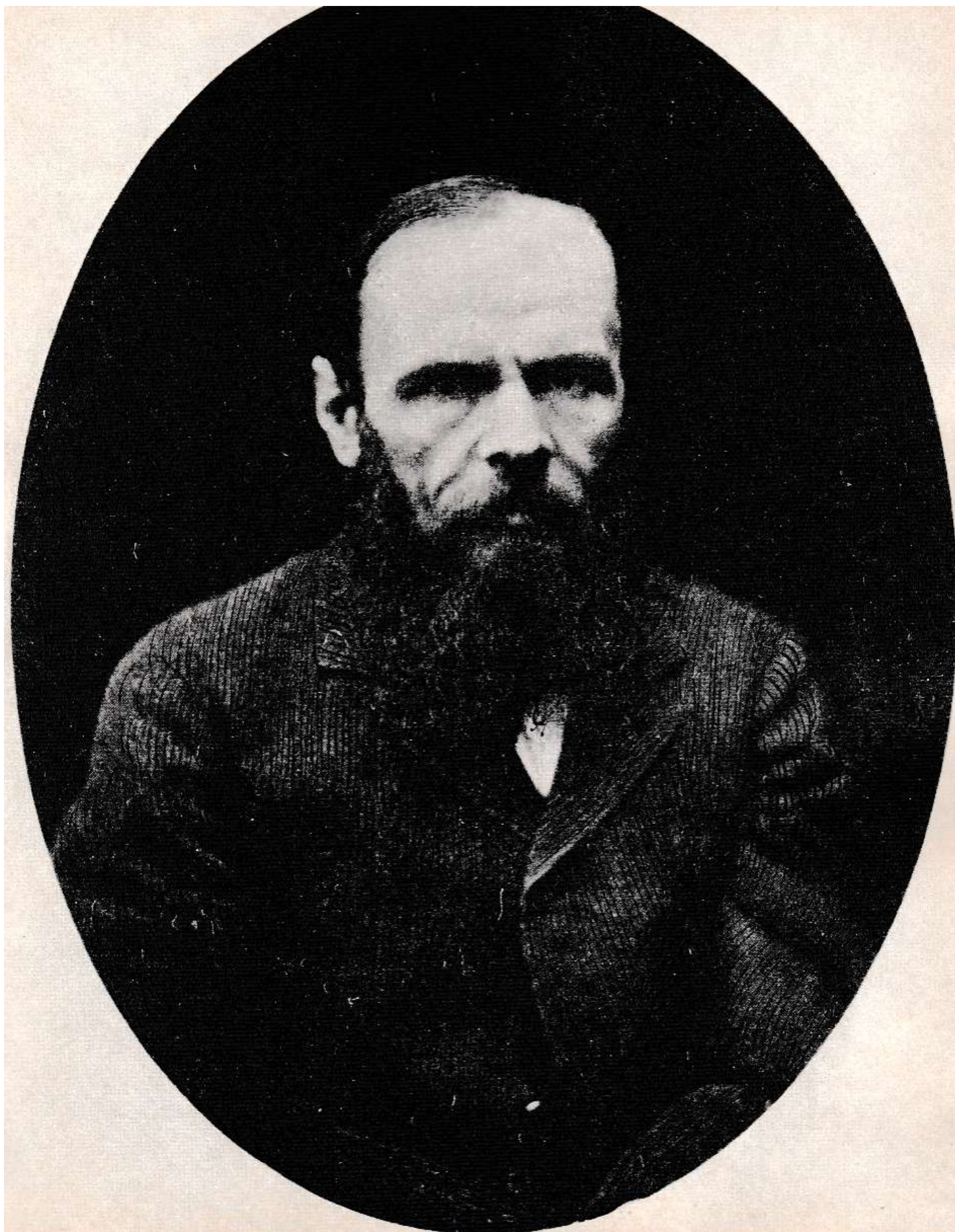
घंटा दो या बल्कि तीन सेकंड में ही एक बार ज़ोर से और बिल्कुल स्पष्टतः बज रहा था, लेकिन यह मुनादी का घंटा नहीं था, यह तो एक प्रिय नाद था, जो मंद लय में गुंजायमान हो रहा था। सहसा मुझे लगा कि यह तो जाना-पहचाना नाद है, कि संत निकोलस के गिरजे में घंटा बज रहा है। मास्को का यह पुराना लाल गिरजा हमारे बोर्डिंग स्कूल के सामने ही था, ज़ार अलेक्सेइ मिख़ाइलविच* ने इसे बनवाया था – बेलबूटेदार, बहुत सारे गुम्बदों और स्तम्भों वाला गिरजा। मुझे यह भी ख़्याल आया कि अभी-अभी ईस्टर सप्ताह बीता है और अब स्कूल के बगीचे में पतले-पतले भोज वृक्षों पर नई-नई निकली हरी-हरी पत्तियां कंपायमान हो रही होंगी। ऐसा ही दिन था तब। हमारी कक्षा में ढलती दुपहरी की तिरछी धूप पड़ रही थी। कक्षा के बाईं ओर वाले छोटे से

---

* सन् १६४५ से १६७६ तक रूस का ज़ार। – सं०

कमरे में, जहां साल भर पहले तुशार ने मुझे काउंटों और सीनेटरों के बच्चों से अलग ले जाकर रखा था, एक मेहमान बैठी थीं। हां, हां, मैं किसी ऊंचे घराने का नहीं था, तो भी मेरे पास एक महिला आई थीं। जब से मैं तुशार के यहां रह रहा था, पहली बार मुझसे मिलने कोई आया था। जैसे ही वह अंदर आई थीं मैं उन्हें पहचान गया था: यह मेरी मां थीं, हालांकि उस दिन से जब गांव के गिरजे में उन्होंने मुझे युखारिस्त दिलाया था और गुम्बद के नीचे एक कबूतर उड़ा था, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा था। हम दोनों अकेले बैठे थे और मैं उन्हें आंखें चुराकर अजीब तरह से घूर रहा था। बाद में, कई वर्ष पश्चात मुझे पता चला था कि तब वह अपनी मर्ज़ी से, जिन लोगों के संरक्षण में उन्हें रखा गया था उनसे चोरी-चोरी ही मास्को आई थीं, हालांकि उनके पास पैसे भी बहुत थोड़े थे, तो भी वह मात्र मुझे देख पाने को ही आई थीं। यह भी एक अजीब बात थी कि अंदर आकर और तुशार से बात करने के बाद उन्होंने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा कि वह मेरी मां हैं। वह मेरे पास बैठी थीं, और मुझे आश्चर्य हो रहा था कि वह इतना कम बोलती हैं। वह अपने साथ एक गठरी लाई थीं। उन्होंने गठरी खोली, उसमें छह माल्टे थे, कुछ प्रियानिक * और दो मामूली फ़्रेंच बंद। मुझे उनका फ़्रेंच बंद लाना अच्छा न लगा, और मैंने बुरा सा मुंह बनाकर कहा कि हमें यहां भोजन बहुत अच्छा मिलता है और हमें रोज़ाना चाय के साथ फ़्रेंच बंद मिलते हैं।

"कोई बात नहीं, बेटा, मैं तो अपने भोलेपन में सोच रही थी कि शायद उन्हें वहां स्कूल में खाना अच्छा न मिलता हो। बुरा न मानना, बच्चे।"

"जी, वह अन्तनीना वसील्येव्ना (तुशार की पत्नी) को भी बुरा लगेगा। और साथी भी मेरा मज़ाक़ उड़ाएंगे ..."

"तो, नहीं लोगे क्या? ले लो, खा लेना।"

"अच्छा, रहने दीजिए ..."

उनकी सौगात को मैंने हाथ तक न लगाया; माल्टे और प्रियानिक मेरे सामने मेज़ पर रखे थे और मैं आंखें झुकाए, पर बड़े आत्मगौरव की भावना के

---

* शहद, मुरब्बे आदि के साथ बनाये जानेवाले रूसी बिस्कुट। – सं०

साथ बैठा हुआ था। कौन जाने, हो सकता है, मेरा तब यह छिपाने का बिल्कुल भी मन न रहा हो कि उनके यों मिलने आने से मैं दूसरे लड़कों के सामने शर्मिंदा हूं; या कम से कम उन्हें यह जताना चाहता था ताकि समझ जाएं कि: "देखिए, आपके कारण मेरा अपमान हो रहा है और आप स्वयं भी यह नहीं समझती हैं"। ओह, मैं उन दिनों तुशार के पीछे ब्रुश उठाए चलता था, उसके कोट की धूल झाड़ता था! मैं यह भी कल्पना कर रहा था कि मां के जाते ही मुझे लड़कों से कैसी-कैसी बातें सुननी होंगी और हो सकता है, स्वयं तुशार भी मेरी खिल्ली उड़ाए। सो मेरे मन में मां के लिए रत्ती भर भी सद्भावना न थी। कनखियों से मैं उनका पुराना सा, गाढ़े रंग का लिबास देख रहा था, उनके हाथ कैसे खुरदुरे थे – मज़दूरों जैसे, और जूतियां तो बिल्कुल ही घटिया थीं; चेहरा दुबला पड़ गया था, माथे पर झुर्रियां पड़ने लगी थीं। हां, यह सच है कि बाद में, मां के चले जाने पर शाम को अन्तनीना वसील्येव्ना ने कहा था: "आपकी maman अवश्य ही कभी देखने में खासी अच्छी रही होंगी"।

ऐसे ही हम बैठे हुए थे और सहसा नौकरानी अगाफ़्या ट्रे लिए अंदर आई। ट्रे पर कॉफ़ी का कप रखा हुआ था। दोपहर के खाने के बाद का समय था और इस समय तुशार दम्पति सदा अपनी बैठक में कॉफ़ी पिया करते थे। परंतु मां ने धन्यवाद कहा और कॉफ़ी नहीं ली। बाद में मुझे पता चला कि उन दिनों वह कॉफ़ी बिल्कुल ही नहीं पीती थीं, क्योंकि उससे उनका जी घबराने लगता था। बात यह थी कि तुशार और उसकी पत्नी मन ही मन, प्रत्यक्षतः यह सोच रहे थे कि मां को मुझ से मिलने की अनुमति देकर उन्होंने बहुत बड़ा उपकार किया है, अतः मां के लिए कॉफ़ी का कप भेजना तो उनकी मानवीयता का पराक्रम ही था, जो उनकी सभ्यता और यूरोपीय चाल-चलन के लिए अत्यंत मान की बात थी। और मां ने मानो जान-बूझकर कॉफ़ी से इन्कार कर दिया था।

मुझे तुशार के पास बुलाया गया, और उसने यह आज्ञा दी कि मैं अपनी सभी कापियां और पुस्तकें ले जाकर मां को दिखाऊं, ताकि "वह देख लें कि आपने मेरे स्कूल में कितना ज्ञान पाया है"। तभी अन्तनीना वसील्येव्ना ने होंठ सिकोड़कर और मुंह बनाते हुए उपहास के स्वर में कहा:

"लगता है आपकी maman को हमारी कॉफ़ी पसंद नहीं आई।"

मैंने कापियां उठाईं और मां को दिखाने ले चला। कक्षा में काउंटों और सीनेटरों के बच्चे झुंड बनाए खड़े थे और चोरी-चोरी मेरे कमरे में झांक रहे थे। मुझे तुशार की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना अच्छा ही लगा। मैं एक-एक करके कापियां खोलने और बताने लगा : "यह देखिए – यह फ़्रांसीसी व्याकरण का पाठ है, यह इमला हमने लिखी है, यह रहे क्रियाओं के रूप, यह भूगोल की कापी है, यूरोप के प्रमुख नगरों और संसार के सभी भागों का वर्णन," इत्यादि। आधे घंटे तक मैं एकसुरी, धीमी आवाज़ में बताता गया और सारा समय बड़े शिष्ट बालक की भांति आंखें झुकाए रहा। मैं जानता था कि मां की समझ में यह सब नहीं आता, हो सकता है उन्हें पढ़ना-लिखना भी न आता हो, परंतु मुझे अपनी यही भूमिका बहुत अच्छी लग रही थी। किंतु मैं उन्हें थका न पाया – वह सुनती जा रही थीं, एक बार भी मुझे टोका नहीं, बड़े ध्यान से और आदर भाव से सुनती रहीं। अंततः मैं स्वयं ही ऊब उठा और मैंने बोलना बंद कर दिया। हां, मां की आंखों में तब उदासी थी और चेहरे पर दयनीय भाव।

आख़िर वह जाने को उठ खड़ी हुईं। सहसा स्वयं तुशार अंदर चला आया और भोंडे दम्भ से पूछने लगा : "क्या आप अपने पुत्र की सफलता पर संतुष्ट हैं?" मां कुछ बुदबुदाने लगीं और कृतज्ञता प्रकट करने लगीं; अन्तनीना वसील्येव्ना भी आ गईं। मां उन दोनों से विनती करने लगीं : "अनाथ को न छोड़ना – अब तो इसे अनाथ ही समझिए, इसे आप अपने आश्रय में रखे रहें ..." उनकी आंखें भर आईं और वह उन दोनों के सामने कमर तक झुक गईं, ठीक वैसे ही जैसे मामूली लोग जब बड़े लोगों से कुछ मांगने आते हैं, तो झुक-झुककर सलाम करते हैं। तुशार और उसकी पत्नी को इसकी आशा तक न थी, प्रत्यक्षतः अन्तनीना वसील्येव्ना का दिल पिघल गया और उसने, निस्संदेह, तभी कॉफ़ी के कप के बारे में अपना मत बदल लिया। तुशार और भी अधिक अहंमन्यता के साथ, मानवीयता दर्शाते हुए बोला कि वह "बच्चों में भेदभाव नहीं करता, कि यहां सभी उसके अपने बच्चे हैं, और वह उनका पिता, कि वह मेरे साथ काउंटों और सीनेटरों के बच्चों के समान ही बर्ताव करता है और इसकी कद्र करनी चाहिए", इत्यादि, इत्यादि। मां झुक-झुककर

सलाम करती जा रही थीं, पर फिर वह सकपका गईं और आखिर मेरी ओर मुड़ीं। उनकी आंखों में आंसू चमके, बोलीं :

"अलविदा, मेरे लाल!"

और उन्होंने मुझे चूमा, नहीं, मैंने उन्हें अपना गाल चूमने दिया। वह तो शायद बारम्बार मुझे चूमना, बांहों में भरना, गले लगाना चाहती थीं, पर न जाने लोगों के सामने उन्हें स्वयं ही संकोच हो उठा, या किसी और बात से मन कड़वा हो गया, या समझ गईं कि मैं शर्मिंदा हो रहा हूं, बस वह जल्दी-जल्दी तुशार और उसकी पत्नी के सामने झुकीं और बाहर चल दीं। मैं खड़ा रहा।

"Mais suiver donc votre mêre." अन्तनीना वसील्येव्ना बोलीं। "il n'a pas de cœur cet enfant!"*

तुशार ने जवाब में कंधे बिचका दिए, निस्संदेह इसका अर्थ था : "आखिर मैं इसे नौकर यों ही तो नहीं समझता।"

आज्ञापालन करते हुए मैं मां के पीछे-पीछे सीढ़ियां उतरने लगा। हम बाहर निकल आए। मैं जानता था कि वे सब अब खिड़की से झांक रहे हैं। मां गिरजे की ओर मुड़ीं और तीन बार ज़मीन तक झुककर सलीब का चिह्न बनाया। उनके होंठ कांप रहे थे। घण्टे का नाद गूंज रहा था। वह मेरी ओर मुड़ीं, उनसे रहा न गया, दोनों हाथ मेरे सिर पर रख दिए और रो पड़ीं।

"मां, बस करिए न... शर्म आती है... वे सब खिड़की से देख रहे हैं..."

उन्होंने झटके से सिर उठाया और जल्दी-जल्दी बोलने लगीं :

"हे भगवान... भगवान तेरी रक्षा करे... हे देवदूत, हे माता मरियम, ईसा के प्यारे संत निकोलस रक्षा करो... हे भगवान, हे भगवान!" वह जल्दी-जल्दी बोलती जा रही थीं, और मेरे ऊपर ज़्यादा से ज़्यादा सलीब के निशान बनाने की कोशिश कर रही थीं। "मेरे लाल, मेरे लाड़ले! ठहर तो, मेरी आंख के तारे..."

---

* मां को छोड़ने जाओ न... कैसा निर्मम लड़का है! (फ़्रांसीसी)।

उन्होंने जल्दी से जेब में हाथ डाला और रूमाल निकाला, नीला सा चौखानेदार रूमाल था और उसके सिरे पर कसकर गांठ बंधी हुई थी। वह गांठ खोलने लगीं, पर गांठ खुलती ही न थी।

"अच्छा, लो रूमाल समेत ही रख लो, साफ़ है, काम आ जाएगा। क्षमा करना, बेटा, ज़्यादा तो मेरे पास हैं ही नहीं, ... लाल।"

मैंने रूमाल ले लिया, कहना चाहता था कि "हमें श्रीमान तुशार और अन्तनीना वसील्येव्ना से सब कुछ मिलता है और हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं", पर अपने को रोक लिया और रूमाल रख लिया।

आख़िर वह चली गईं। मेरे लौटने से पहले ही काउंटों और सीनेटरों के बच्चे सारे माल्टे और प्रियानिक खा गए थे। बीस-बीस कोपेक के चार सिक्के लम्बेर्त ने तुरंत मुझ से छीन लिए; इन पैसों से लड़कों ने पेस्टरियां और चाकलेट ख़रीदे, मुझे दिए तक नहीं।

पूरे छह महीने बीत गए। अक्तूबर का महीना आया, तेज़ ठंडी हवाएं चलने लगीं, दिन-दिन भर पानी बरसता रहता। मैं मां को बिल्कुल भूल ही चुका था। ओह, तब मेरे हृदय में घृणा घर कर चुकी थी, मुझे सबसे घृणा थी, घोर घृणा; मैं अभी भी तुशार के कपड़ों पर ब्रुश करता था, पर रोम-रोम से उससे घृणा करता था और मेरी यह घृणा दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही थी। तभी एक दिन उदासी भरी संध्या के झुटपुटे में मैं अपने बक्से में कुछ ढूंढ़ रहा था और सहसा मुझे एक कोने में वह सादा सा नीला रूमाल दिखा। मैंने जैसे उसे बक्से में डाल दिया था, वैसे ही वह पड़ा हुआ था। मैंने उसे निकाला और कुछ कौतूहल के साथ देखने लगा; रूमाल के सिरे पर अभी तक गांठ का निशान बना हुआ था, सिक्कों की गोल छाप तक साफ़ नज़र आ रही थी। मैंने रूमाल वापस रख दिया और बक्सा नीचे खिसका दिया। यह त्योहार से पहले के दिन की बात थी, तभी गिरजे में जगराते की पूजा का घंटा बजा। सभी लड़के दोपहर के खाने के बाद ही अपने-अपने घर जा चुके थे। इस बार अकेला लम्बेर्त ही स्कूल में रह गया था, न जाने क्यों उसे लिवाने कोई नहीं आया था। वह अभी भी मुझे पहले की तरह पीटा करता था, पर अब बहुत कुछ मुझे बताने लगा था और उसे मेरी ज़रूरत थी। हम सारी शाम

लेपाभ * की पिस्तौलों की बातें करते रहे, जो हम दोनों में से किसी ने भी देखी नहीं थीं, और चेर्केसों ** की तलवारों की बातें, कि क्या धार होती है उनकी, कि अगर अपना एक दस्यु गिरोह बना लिया जाए तो कितना अच्छा रहे ... दस बजे हम सोने को लेटे ; मैंने सिर तक कम्बल ओढ़ा और सिरहाने तले से नीला रूमाल निकाल लिया : घंटे भर पहले मैं न जाने क्यों उसे बक्से में से निकाल लाया था और जब हमने बिस्तर लगाए, तो उसे सिरहाने तले रख दिया था। मैंने रूमाल अपने मुंह से लगा लिया और सहसा उसे चूमने लगा। "मां, मां," मैं बुदबुदा रहा था, मां को याद करके मेरा कलेजा मला जा रहा था। आंखें मूंदता, तो मुझे उसका चेहरा नज़र आता और कांपते होंठ, जब वह गिरजे के सामने सलीब के निशान बना रही थीं और फिर मुझ पर, और मैं कह रहा था : "शर्म आती है, देख रहे हैं"। "मां, प्यारी मां, जीवन में एक बार तो तुम मेरे पास आई थीं ... कहां हो तुम अब, मां? तुम्हें अपने बेटे की याद आती है, जिससे मिलने तुम आई थीं? अब एक बार मुझे दिख जाओ, सपने में ही आ जाओ, बस एक बार, और मैं तुम्हें कह दूं कि तुम्हें कितना प्यार करता हूं, तुम्हारे गले लग जाऊं, तुम्हारी नीली आंखें चूम लूं, तुम्हें कह लूं कि अब मुझे तुमसे बिल्कुल शर्म नहीं लगती, कि मैं तब भी तुम्हें प्यार करता था, मेरे दिल में तब कैसा दर्द हो रहा था, बस मैं चाकर सा बना बैठा ही हुआ था। मां, तुम कभी न जान पाओगी कि मुझे तुमसे तब कितना प्यार था! मां, मेरी मां, कहां हो तुम, सुन रही हो मेरी आवाज़? मां, याद है वह कबूतर, गांव में?.."

---

* १६ वीं सदी में सारे यूरोप में मशहूर पिस्तौलों का निर्माता। – सं०
** काकेशिया में बसनेवाली एक जाति। – सं०